कहते क्या हैं होता क्या है

आम चुनाव फिर आ गये हैं । फिर वो ही सारी कवायद। राजनीतिक दलों की रेलम पेल। उम्मीदवारों की भाग दौड़। घोशणा पत्रों में किये गये लम्बे वादे। प्रचार का कोलाहल। अखबारों और ढेर सारे टीवी चैनलों की सुर्खियां। चुनावी वि ोशज्ञों की अठखेलियां। और इस सारी उथल–पुथल के बीच भ्रांत मतदाता– उस एक क्षण कि प्रतिक्षा मे जब एक बटन दबाकर वह आने वाले पाँच वर्शो के लिए अपनी राजनीतिक पसंद–नापसंद का इजहार कर देता है! लेकिन इस सारी प्रकिया में यह स्पश्ट नही हो पाता है कि **लोग कहते क्या है और वास्तव में होता क्या है।** चुनावी लोकतन्त्र के इस दोहरेपन का जानना आर समझना ज़रूरा ह।

यह कहा जाता है कि लोकतन्त्र में चुनावों के माध्यम से जनता अपनी पंसद की सरकार का चयन करती है। लोकतन्त्र और चुनाव का रि ता ताले और चाबी की तरह है जहाँ चुनाव रूपी चाबी से लोकतन्त्र रूपी ताले को खोला जाता है जिससे सरकार रूपी भवन में प्रवे ा किया जा सके। जनता की चुनावी वरियताओं और सरकार गठन की प्रकिया में प्रत्यक्ष तालमेल हो अब यह जरूरी नहीं है। यह कटु सत्य है कि पन्द्रहवें लोक सभा चुनाव के पाँच चरणों में मतदाता अपनी पसंद का इज़हार करेगा लेकिन छठे चरण में राजनेता सरकार का गठन करेगें और इस चरण का सम्भवतः पहले पाँच चरणों से कोई वि ोश तादात्मय नहीं होगा।

यह कहा जाता है कि भारत में चुनाव जनता का सबसे बड़ा पर्व है। कुछ विद्वान इसे राश्ट्रीय पर्व कहते हैं तो कुछ अन्य कहते है कि यह 28 राज्यों में हो रहे 28 पर्व हैं। लेकिन पर्व तो हर्शोउल्लास और उमंग से बनाये जाते हैं। उन्हे मना कर तो हम सभी दूरियों को कम करते हैं। पर यह कैसा पर्व है जो व्यक्तियों और समुदायों में संघर्श और विरोध को बढ़ावा देता है। इस पर्व को आयोजित करने वालों के लिए अब यह अत्यन्त कठिन कार्य हो गया है। तभी तो इसे पाँच चरणों में आयोजित किया जाता है। दे ा में 8,28,804 मतदान केन्द्रों पर लगभग 50 करोड़ मतदाता 6 हजार से अधिक उम्मीदवारों का भाग्य तय करेंगे। सारी प्रकिया में अनुमानतः दस हजार करोड़ से अधिक धनराि ा का व्यय होगा। लगभग 1 माह से

अधिक समय तक सरकारी महकमा ठप्प सा हो जाएगा। उम्मीदवारों की बढ़ती संख्या और राजनैतिक विकल्पों का सिमटता दायरा मतदाताओं के लिए इस लोकतान्त्रिक पर्व को दुरूह बना देता है। इतना ही नहीं यदि उम्मीदवारों कि नजरों से देखा जाए तो इस पर्व की कठिनाईयाँ और भी दुश्कर हैं। तमाम विशम परिस्थितियों में एक विस्तृत भू–भाग पर 14 से 16 लाख मतदाताओं से सम्पर्क करना क्या पर्व मनाना कहा जा सकता है ?

यह भी कहा जाता है कि चुनाव विचारधारा, सिद्धान्तों और राजनैतिक मूल्यों की परस्पर प्रतिस्पर्द्धा है लेकिन अब चुनावों में अधिकां ा राजनैतिक दल और उम्मीदवार विचारों और मूल्यों की प्रतिद्वन्दिता से परहेज करते है! जाति, धर्म, क्षेत्र, आदि मुद्दे चुनावी लोकतन्त्र की द ाा और दि ाा का निर्धारण करते हैं। पहचान पर आधारित राजनैतिक और चुनावी प्रतिस्पर्द्धा दे ा और समाज का अलग–अलग स्तर पर विखण्डन करते है।

यह कहा जाता है कि लोकसभा चुनाव दे ा के आम चुनाव है। इन चुनावों में राश्ट्रीय नेतृत्व राश्ट्रीय दलों के माध्यमों से दे ा व्यापी मुद्दों को ध्यान में रखते हुए सरकार का गठन करते है। लेकिन अब लोकसभा चुनावों में राश्ट्रीय स्तर की प्रतिस्पर्द्धा का प्रभाव कम होता जा रहा है। राश्ट्रीय दलों के स्थान पर क्षेत्रिय दल, राश्ट्रीय नेतृत्व के स्थान पर प्रादे िक नेतृत्व और राश्ट्र व्यापी मुद्दो के स्थान पर स्थानीय मुद्दे महत्वपूर्ण हो गये है। पहले चुनावो ंको जीतने के लिए जहाँ वृहत स्तर पर सामाजिक गठबन्धन हुआ करते थे अब इन गठबन्धनो का स्वरूप सिकुड़ कर स्थानीय हो गया है। कोई भी राजनैतिक दल गठबन्धन किसी एक मुद्दे के आधार पर चुनाव में भाग नही ले सकता है।

यह कहा जाता है कि हमारी निर्वाचित संस्थाओं का स्वरूप हमारे समाज के अनुरूप होता जा रहा है। तर्क यह है कि लोकसभा में निर्वाचित सांसद संख्यात्मक आधार पर जातिगत बनावट के अनुरूप ही होते है। पर यह प्र न विचारणीय है कि क्या हमारा समाज अपराधियों, माफिया सरगनाओं, भ्रश्टाचारियों और अरबपतियों

से भरा है ? क्या चुनाव लड़ना आम आदमी की पहुँच में है ? क्या समाज के सभी तबके समान रूप से चुनावी प्रतिस्पर्द्धा में हिस्सा ले सकते है ?

यह भी कहा जाता है कि वि व के अन्य लोकतन्त्रों की तुलना में भारतीय लोकतन्त्र मतदाताओं की चुनावी सहभागिता के आधारों पर भिन्न है। जहाँ अन्य समाजों में वंचित समुदाय चुनावी राजनीति में कम हिस्सा लेते है, वहीं हमारे यहाँ वंचितो की आस्था चुनावी सहभागिता में बढ़ती जा रही है और स्थानीय स्तर पर सहभागिता और भी अधिक है। लेकिन क्या इस तथ्य के आधार पर हम इस निश्कर्श पर पहुँच सकते है कि हमारी राजनैतिक और प्र ासनिक व्यवस्था वंचितों के प्रति अधिक जिम्मेदार और सहानुभुति पूर्ण है। प्रायः यह देखा गया है कि सरकारें जिन समुदायों के समर्थन से से गठित होती है उन समुदायों के विकास के लिए तत्पर नही रहती है।

भारतीय चुनावी लोकतन्त्र में ऐसे विरोधाभासों की कमी नहीं है। जहाँ एक ओर ये विरोधाभास चुनावी माहोल में अधिक प्रखर हो जाते है वहीं इस बात से भी इनकार नहीं किया जा सकता है कि चुनाव ही इन विरोधाभासों को दूर करने का उपयुक्त जरिया है। आव यकता इस बात की है कि चुनावी प्रकिया में संग्लन पात्र आव यक ईच्छा भाक्ति और राजनीती प्रतिबद्धता का परिचय दे।

डॉ. संजय लोढ़ा
राजनीति विज्ञान विभाग
मोहन लाल सुखाड़िया वि व विद्यालय
उदयपुर